09 स्कूल प्रशासनः मानवीयता और सजीवता के लिए

जी. गौतम

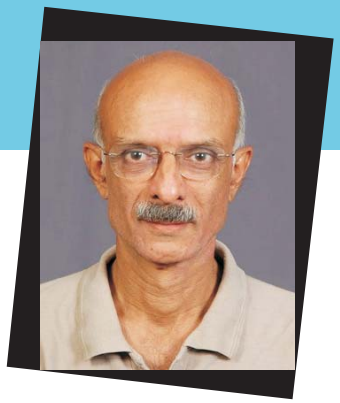

शिक्षण और कुछ नहीं बस सहज विवेक है। ***–जे. कृष्णमूर्ति***

हम सही हैं, इसके बारे में दृढ़ होना हठधर्मिता नहीं है; पर यह सोचने में असमर्थ होना कि शायद हमसे कहीं गलती हो गई होगी, हठधर्मिता है। ***–जी. के. चेस्टरस्टन***

अल्पमत कभी–कभी सही भी होता है; बहुमत हमेशा ही गलत होता है। ***–जॉर्ज बर्नाड शॉ***

प्रशासनः

- किसी व्यवसाय, संगठन आदि को चलाने की प्रक्रिया या गतिविधि। इसके लिए जिम्मेदार लोगों को सामूहिक रूप से देखना।
- कार्यकारी कर्तव्यों को निभाना।

(वैबस्टर शब्दकोश)

प्रशासन। यह शब्द अपने साथ प्रभुता, तटस्थता का एक घेरा; एक रोगाणुरोधक गंध लिए रहता है। अतः शब्द के साथ शुरुआत करना खराब शुरुआत होगी। चलिए कोई दूसरा प्रारम्भ बिन्दु सोचें।

स्कूलों के अपने ढाँचे और प्रक्रियाएँ होती हैं। कुछ सोचे समझे होते हैं; किसी स्कूल की नियंता संस्था या कर्मचारियों की सोच की उपज। बाकी अनपेक्षित ढंग से सामने आती हैं – वे सम्भवतः नियोजित नहीं होतीं–पर वे वास्तविक और मूर्त होती हैं।

यह कहा जा सकता है कि प्रशासन 'सोचे–विचारे व गैर सोचे–समझे ढाँचों व प्रक्रियाओं पर दिया जाने वाला ध्यान' होता है। खासतौर पर स्कूलों में, 'प्रधानाध्यापक' या 'प्राचार्य' जैसे पदों के चलते, प्रशासन का मतलब एक व्यक्ति का 'नियंत्रण' प्रतीत होता है। इससे ज्यादा भ्रामक बात और कोई नहीं हो सकती। यदि प्रशासन किसी स्कूल की 'संस्कृति' का आशय भी देना चाहे, अर्थात जिस तरह से चीजें की जाती हैं, तो यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि क्यों प्रशासन कभी भी सिर्फ एक व्यक्ति के हाथों में नहीं होता।

हम ऐसे दौर में रह रहे हैं जहाँ जबरदस्त बाह्य परिवर्तन हो रहे हैं। नगर नए आकार ले रहे हैं। कार्यक्षेत्रों का रूपान्तरण हो रहा है और गतिशीलता आसान हो गई है। 'जीवनभर सीखना' आज न केवल एक रूपक बल्कि एक वास्तविकता बनकर यहाँ मौजूद है। इन्टरनेट पर जानकारियों की सुलभता, ईमेल के द्वारा दुनियाभर में पहुँच होना तथा वीडियो कॉन्फ्रैन्सिंग जैसे परिदृश्यों ने 'ज्ञान' और 'समझ' जैसे शब्दों को नए अर्थ दे दिए हैं। अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने के बजाय हमसे हमारी सीखने, पुनर्अनुकूलन कर पाने और मिलकर कार्य करने की क्षमता दर्शाने के लिए कहा जा रहा है। स्थापित कार्यपद्धतियों की सुरक्षा को साथ लेकर चलने के बजाय हमें इस आश्वासन के बगैर, कि यह निश्चित रूप से सुधार ही है, पुरानी जमीन से हटने की चुनौती दी जा रही है।

यह दौर मनुष्यों से पहले की ज्ञात सुरक्षाएँ छीने ले रहा है, और साथ ही नई असुरक्षाएँ– आतंक, युद्ध, प्राकृतिक आपदाएँ– दुखद नियमितता के साथ सामने आती जाती हैं। समाज में खलबली मची हुई है। आने वाले कल के प्रत्येक कदम पर बदलाव और पुनर्अनुकूलन दिखाई दे रहा है। काम के घण्टों में लचीलापन तथा कहीं भी और कभी भी सीख सकना स्कूल के लिए जबरदस्त महत्व रखने वाली दो महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। कक्षाओं व समय–सारणियों की ढाँचागत व्यवस्थाओं पर भी सवाल खड़े किए जा रहे हैं और इन सम्भावनाओं द्वारा उन्हें भी पुनर्व्यवस्थित किया जा रहा है। इस प्रकार अब कोई भी स्कूल इस दौर की इन रूपान्तरकारी ताकतों के प्रति आँखे मूँदे नहीं रह सकता।

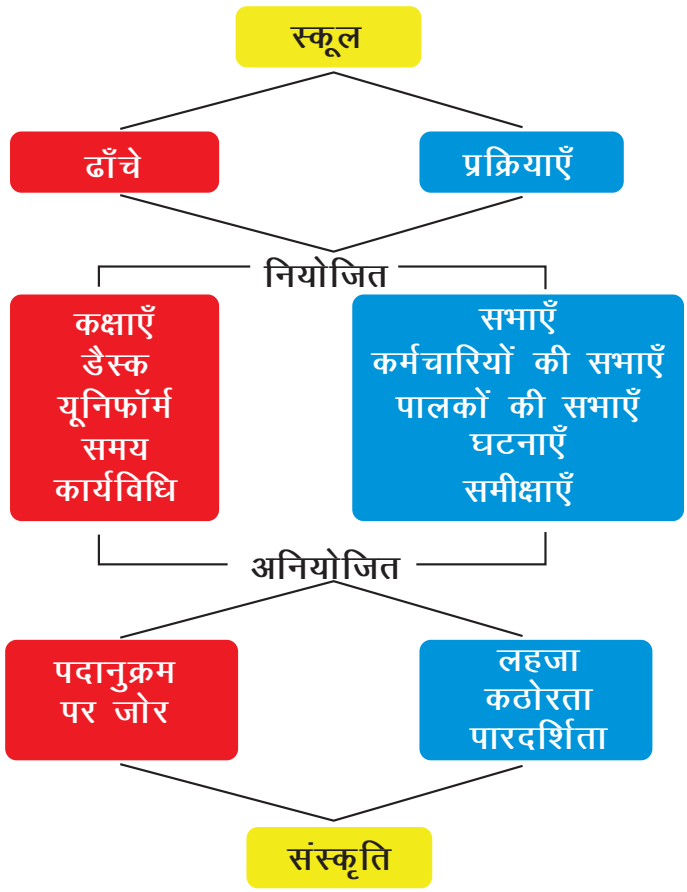

सलाह–मशविरे की संस्कृति जरूरी है। कोई एक अकेला व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि उसके पास सर्वोत्तम विचार या सर्वश्रेष्ठ समाधान है। खुलेपन, पूर्वाग्रह, सहयोग, साझे उद्देश्यों के बारे में प्रश्न उठना बहुत स्वाभाविक है। विद्यार्थियों को शिक्षित करने की इस साझी यात्रा में उद्देश्यों को स्पष्ट करने की जरूरत कई बार पड़ेगी। नए दृष्टिकोणों, मुश्किल दृष्टिकोणों तथा चौंका देने वाले रोमांचक दृष्टिकोणों के मुताबिक कार्य करने के लिए धैर्य की जरूरत होगी। हमारे अनुकूलन को चुनौती मिलेगी।

सभी छोटे–छोटे निर्णयों से ही, चाहे वे साभिप्राय लिए गए हों चाहे अचेतन मन से, किसी स्कूल की संरचना, उसकी प्रकृति निर्मित होती है। भले ही उस पर कितना भी काम किया गया हो, पर किसी भी स्कूल की संस्कृति में मशीनी परिष्करण नहीं होगा। उसका स्पर्श या प्रकृति किसी हाथ से बुने गए कपड़े की भाँति ही होगी क्योंकि उसमें मनुष्य व उनके द्वारा लिए गए निर्णय समाहित होते हैं। लोग कभी भी मशीन जैसी सटीकता के साथ काम नहीं करते। यही उनकी खूबसूरती और यही उनकी समस्या भी है। बहुत सी परिस्थितियों में शिक्षक द्वारा महसूस किए जाने वाले अनियोजित दबावों के दौरान, तथा नियोजित प्रयासों में, स्कूल की आत्मा प्रकट होती है। ऐसी स्थितियों में ही लोग आधारभूत मूल्यों, तथा किसी संस्था का मार्गदर्शन करने वाली निश्चितताओं व आशंकाओं के प्रति जागरूक होते हैं।

नए विचार कुछ वायदों को निभाते वक्त व्यक्तिगत असुविधा के स्तरों को बढ़ा देंगे। हमेशा ही ये तीन मुख्य मुद्दे रहेंगे –

- मानवीय असफलताओं के लिए हमेशा ही संस्थाओं के पास सहयोग व सराहना की संस्कृति का होना जरूरी होगा।
- साथ ही साथ, नए विचारों का स्वागत किया जाना होगा और क्रियान्वयन में आने वाले उतारों को सहन करना होगा।
- प्रोत्साहित करना तथा हमारे संवादों में दोष से मुक्त रहना बेहद महत्वपूर्ण होगा।

प्रभुत्व, जैसा कि उसे पारम्परिक रूप से परिभाषित किया जाता है, ने अपनी गति और प्रभावोत्पादकता खो दी है, और आज उसे पिछड़ेपन की निशानी माना जाता है। किसी नेता या बॉस में बिना दृढ़ विश्वास किए हुए अनुकरण करना कमजोर बुद्धि की निशानी है। बराबरी के दर्जे से सवाल उठाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिस तरह से द्वितीय विश्वयुद्ध से स्त्री–मुक्ति की मुहिम को जबरदस्त बल मिला था, ठीक उसी तरह कम्प्यूटर उद्योग ने सफलता के पारम्परिक मन्दिरों, संगठनों में बेअदब सवाल खड़े करने के युग का प्रारम्भ किया है। मजदूरों के काम करने के ऐसे स्थान सफल संगठन नहीं होते जहाँ से शोषण की बू आती हो, या जहाँ उन मजदूरों को वश में करने के लिए सामन्ती या औपनिवेशिक कोड़ों का इस्तेमाल किया जाता हो; बल्कि सफल संगठन वे स्थान होते हैं जो पारदर्शिता और समता को सम्मानजनक पारस्परिक व्यवहार व लेन–देन के देदीप्यमान तत्व के रूप में बड़े गर्व के साथ धारण करते हों। अधिकारवादी सिद्धान्त बखूबी प्रमाणित व सर्वविदित हैं। समतावादी सिद्धान्त भी बखूबी प्रमाणित हैं पर उतने ज्ञात नहीं हैं। सीखने के पालने के रूप में स्कूलों को वर्तमान समय से आगे रहना होगा और भविष्य का पूर्वानुमान लगाते हुए इन सिद्धान्तों को मजबूती से आत्मसात करना होगा। आगे बढ़ने से पहले, हमें यह स्वीकार करना होगा कि **अधिकांश स्थानों पर समतावादी ढंग की कार्यपद्धति अजीब सी लगती है।** हमारे अपने–अपने व्यक्तिगत इतिहास और मानव जाति का इतिहास हमें इस कार्यपद्धति पर पूर्णतः भरोसा करने से रोकता है। फिर भी, आगे बढ़ने का यही एक मार्ग है।

स्कूल प्रशासन के बारे में बात करने के प्रयास में, व्यावहारिक बुद्धि के साथ शुरुआत करना सबसे अच्छा रहेगा। यह बहुत स्वाभाविक प्रतीत होता है कि कोई भी प्रशासन **सम्मान, निष्पक्षता और पारदर्शिता** के आधारों पर निर्मित होना चाहिए। इन तीनों को **देखभाल** के छाते के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

यह ध्यान रखना होगा कि किसी संस्था में निष्पक्षता की कमी होना उसके ताने–बाने को अपरिवर्तनीय ढंग से कमजोर कर देता है। निष्पक्षता को सभी के द्वारा देखा जाना चाहिए और वातावरण में महसूस किया जाना चाहिए।

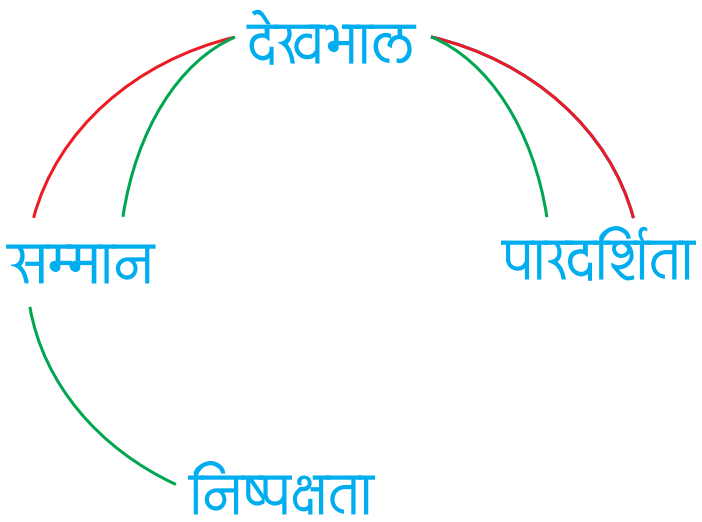

किसी स्कूल की प्रक्रियाएँ दूसरे समूहों–संगठनों की प्रक्रियाओं से अलग नहीं होतीं। सभी संस्थाएँ मोटे तौर पर एक ही प्रकार की या मिलती–जुलती परिस्थितियों का सामना करती हैं। भिन्नता सिर्फ उनके सामना करने के तरीकों में होती है। साझे स्थानों, जैसे संस्थाओं और संगठनों में मिल–जुलकर काम करना अपरिहार्य होता है। स्कूल कोई अपवाद नहीं हैं।

''एक सही ढंग के स्कूल में सभी शिक्षकों के बीच एक उदार सहयोग का माहौल होना चाहिए। सभी शिक्षकों को अक्सर मिलते रहना चाहिए तथा स्कूल की विभिन्न समस्याओं के बारे में बात करना चाहिए; और जब वे किसी कार्यविधि को लेकर सहमत हो चुके हों, तो जाहिर है कि उन्हें उसे अमल में लाने में कोई दिक्कत नहीं होना चाहिए। यदि बहुमत द्वारा लिए गए किसी निर्णय से कोई शिक्षक सहमत नहीं होता, तो उस पर शिक्षकों की अगली सभा में चर्चा की जा सकती है।

किसी भी शिक्षक को प्रधानाध्यापक से नहीं डरना चाहिए, न ही बुजुर्ग शिक्षकों से भयभीत होना चाहिए। खुशी–खुशी समझौता तभी हो सकता है जब सभी के बीच पूर्ण समानता की भावना हो। यह अत्यावश्यक है कि सही तरह के स्कूल में समानता की यह भावना बनी रहे, क्योंकि वास्तविक सहयोग तभी हो सकता है जब श्रेष्ठता और उसकी विपरीत भावना नदारद हों। यदि आपसी विश्वास हो, तो किसी भी मुश्किल या गलतफहमी को बस एक तरफ नहीं रख दिया जाएगा, बल्कि उसे हल किया जाएगा और भरोसे को पुनः कायम किया जाएगा।''

– जे. कृष्णमूर्ति,
शिक्षा तथा जीवन का महत्व

यह एक वक्तव्य किसी व्यक्ति की चेतना में और किसी संस्था की चेतना में समाविष्ट हो जाने पर उसकी संस्कृति को मौलिक रूप से प्रभावित कर सकता है। दुर्भाग्यवश, हम आमतौर पर इस वक्तव्य को शंका, घबराहट, अनिश्चितता और अविश्वास के साथ देखते हैं। इस वक्तव्य के कुछ उपसिद्धान्त और विस्तार भी पेश किए जा सकते हैं – अधिकांश स्वयंसिद्ध प्रतीत हो सकते हैं।

जब विभिन्न लोग एक साथ मिलकर काम करेंगे तो वहाँ विभिन्न दृष्टिकोण और विचार सामने आएँगे। हालाँकि यह जरूरी नहीं है कि ये मिलकर किए जाने वाले किसी स्वस्थ कार्यसंचालन में बाधक बनें, पर अक्सर वे बाधक बनते हैं। संस्थागत गतिशीलता और उसके आगे बढ़ने की क्षमता भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों में तारतम्य स्थापित करने वाली प्रक्रियाओं की मजबूती पर निर्भर करती है।

किसी भी संस्था में सहभागी संस्कृति के विकास के लिए यह जरूरी है कि अलग–अलग दृष्टिकोणों का स्वागत किया जाए और उन्हें सामने रखा जाए। विरोधाभासी रूप से सही निर्णय लेने की क्षमता के लिए ऐसे व्यक्तियों की जरूरत होती है जो भिन्न दृष्टिकोणों को एक तरफ कर दें।

सोचना, विमर्श करना, प्रश्न उठाना किसी स्वस्थ संस्कृति के महत्वपूर्ण गुण होते हैं और एक तथ्य की भाँति सभी लोगों को सभी स्तरों पर इसका अनुभव होना चाहिए। सतर्कता न होने से बाधाएँ पैदा हो जाती हैं।

निर्णय

ऐसा कोई भी निर्णय या पद नहीं होता जिसके अपने कुछ फायदे व कुछ नुकसान न होते हों। जब भी कोई निर्णय किया जा रहा होता है, तब यह याद रखना बहुत जरूरी होता है कि हम कुछ नुकसानों को भी चुन रहे हैं।

सभी स्तरों पर, अन्तिम निर्णय करने से पहले यह पूछना बहुत मददगार साबित होता है कि क्या यह विचार सही है या कि क्या इस विचार का समय आ चुका है।

संकीर्णता या बस कुछ खास लोगों से वास्ता रखने का आचरण, खासतौर से निर्णयकर्ताओं के बीच, भले ही अल्पकालिक नतीजे दे दे, पर अन्ततोगत्वा उससे संस्थागत ढाँचे पर विपरीत असर पड़ता है। अक्सर ही संस्थाओं में कुछ बाधाएँ आती हैं – कुछ पर ध्यान दिया जाता है, बाकियों को छोड़ दिया जाता है। कुछ 'भीतर' रहती हैं, कुछ नहीं।

किसी समूह में प्रोत्साहन को पुरस्कारों और दण्डों के माध्यम से बनाए रखा जाता है। सभी को गम्भीरता से और ससम्मान ध्यानपूर्वक सुनना ही इसका एकमात्र सच्चा विकल्प है।

कुछ औपचारिक तथा व्यापक रूप से फैले हुए मानक व सिद्धान्त अपेक्षित संस्कृति को फैलाने में मदद करते हैं। थोड़ी शब्दाभिव्यक्ति तो अपरिहार्य होती है और संस्था के स्वास्थ्य को जोखिम में डालकर ही इसकी अनदेखी की जा सकती है। हालाँकि, शब्दाभिव्यक्ति का यह खतरा होता है कि जीवन्त प्रक्रियाओं के अभाव में शब्द घिसी–पिटी बातें बनकर रह जाते हैं। और घिसी–पिटी या मुर्दा बातें खोखली संस्थाएँ ही बनाते हैं।

बहुमत और विविधता के मानकों की बात करते हुए भी अधिकांश संस्थाएँ अपने मूल में बेहद कठोर और पदानुक्रम–आधारित होती हैं। यह संस्था की निर्णय–प्रक्रियाओं में सामने आता है।

बढ़ते हुए संगठनों के लिए समय–समय पर नए 'उपायों' को पहचानना या खोजना जरूरी हो सकता है। संस्थाएँ अक्सर खुद को इस प्रश्न पर उलझा हुआ पाती हैं कि 'क्या नए उपायों को अपनाना संस्थागत इतिहास से 'धोखा' करना है?'

अपने इतिहास को 'विभूषित' करने की पर्याप्त प्रक्रियाओं के अभाव में 'ढंग से' आगे बढ़ना कठिन है।

नेतृत्व

- निर्धारित स्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्वक, कुशलता से और परिपूर्णता से मार्गदर्शन करना,
- अगले कदम की तलाश करना और उसे अमल में लाना।

यदि किसी संस्था में नेतृत्व का विकास करने की फिक्र नहीं की जाती तो धीरे–धीरे उस संस्था का विकास अवरुद्ध हो जाता है और वह अपनी विशिष्टता खो देती है। बहुत सम्भावना रहती है कि वह उस वक्त की 'सबसे हावी' संस्कृति में धंस कर रह जाए। किसी भी संस्कृति या समूह के अन्दर मौजूद विशिष्टता को हमेशा ही प्रबल समूहों के हमलों का सामना करना पड़ता है। और किसी संस्था की सफलता की कुंजी उसे बनाए रखने, पुनरुद्धार करने और अगले लोगों के हाथों में सौंपने की प्रक्रियाओं में होती है। **नेतृत्व निर्माण दरअसल किसी मूल्यवान संस्कृति को बचाए व बनाए रखने का प्रयास है, न कि सिर्फ भविष्य में बने रहने की तिकड़म।**

आज के दौर जैसी परिस्थितियों में कुछ नए विचार लोकप्रिय हो चलते हैं, इस दौर में त्वरित बदलाव एक महती आवश्यकता है।

किसी संस्था में असहमति को कैसे पहचाना जाता है, यह महत्वपूर्ण है। असहमति को जगह देना महत्वपूर्ण है और इसे खारिज नहीं किया जा सकता। नई तकनीकें, खासतौर पर इन्टरनैट, दूसरे दृष्टिकोण के लिए होनी वाली पारम्परिक असहिष्णुता को तकरीबन नामुमकिन बना दे रही हैं। यदि असहमति की इजाजत नहीं दी जाए या विरोधी स्वरों को हतोत्साहित किया जाए, तो वह अन्य माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त होगा, और इन्टरनैट दुनिया के किसी भी कोने में पहुँच सकता है। इस मामले में प्रत्येक संगठन और संस्था को कुछ संघर्षों का सामना करना पड़ता है। किसी संगठन की संस्कृति, उसकी मानवीयता, उसकी ताकत और उसका चरित्र, सबसे ज्यादा उसके दायरे में उभरने वाली असहमति को सम्बोधित करने के लिए उसके द्वारा दी जाने वाली जगह और प्रक्रियाओं से ही परिभाषित होते हैं। बेहद क्षुद्र मामलों को छोड़ दें तो सहमति आसानी से नहीं बनती। इस तथ्य को स्वीकार कर लेना तथा किस ढंग से सहकर्मी, मित्र, शिक्षक और विद्यार्थी इस स्थिति को सम्भालते हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण बात है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाएँ स्पष्टतः दूसरे व्यक्ति को 'मना लेने', 'दबाव', या 'प्रभुत्व' के इस्तेमाल की पद्धतियों से भिन्न हैं। असहमति को दिए जाने वाले स्थान को उन्होंने 'सहयोग, पर सिर्फ किसी एक विचार के इर्द–गिर्द नहीं' के रूप में परिभाषित किया है जो वाकई में एक रूपान्तरकारी चुनौती है, न सिर्फ किसी व्यक्ति के लिए बल्कि संस्था के लिए भी।

1995 में मेरी एक नई युवा सहकर्मी, आशा, निर्णयकर्ताओं द्वारा लिए जा रहे एक खास निर्णय को लेकर बेहद चिन्तित हो उठी। तीन दौर की मुलाकातों के बाद, स्कूल के शिक्षकों ने यह निर्णय लिया था कि वह स्कूल के वरिष्ठतम विद्यार्थियों के साथ मुलाकातों के दौर करेगी। आशा ने यह कहते हुए अपनी असहमति दर्ज की, ''मुझे लगता है कि चीजें काफी ठीक चल रही हैं और इस तरह की मीटिंगों के दौर आयोजित करने की कोई जरूरत नहीं है।'' प्राचार्य न तो उसके दृष्टिकोण को दरकिनार किए बगैर आगे बढ़ सकते थे, जिसका कि मतलब यह भी होता कि ''तुम नई हो, युवा हो और इसलिए तुम्हारा दृष्टिकोण अनभिज्ञता से युक्त है'' और न ही यह कहकर आगे बढ़ सकते थे, ''यद्यपि हम तुम्हारी बात सुन तो सकते हैं पर हम तुम्हें गम्भीरतापूर्वक नहीं ले सकते।'' यह एक संस्थागत संकट था।

मैंने और मेरे साथियों ने बुनियादी बातों के बारे में खूब ध्यान से सोचा। हमने आशा से कहा, ''अपने दिल की बात कहने के लिए तुम धन्यवाद की पात्र हो। हमारे लिए यह बहुत मूल्यवान है क्योंकि इसका मतलब है कि यहाँ ऐसे लोगों के लिए भी जगह है जो अपनी मन की बात को सबके सामने रख सकते हैं। यह सुनना हमारे लिए कष्टप्रद हो सकता है पर यह तुम्हारी समस्या नहीं है। दूसरे, कृपया अपनी शंकाओं को हिफाजत से रखो, वे मूल्यवान हैं। कोई भी तुमसे अपना मन बदलने के लिए तुम्हें राजी करने की कोशिश नहीं करेगा। तीसरे, हमें आगे क्या करना चाहिए? हम तो वरिष्ठ छात्रों के साथ मुलाकातों की एक शृंखला आयोजित करने की चर्चाओं में लगे हुए थे। तुम्हें इस पर आपत्ति है और तुम मानती हो कि यह अच्छा विचार नहीं है। क्या हम ऐसी एक मीटिंग करके देखें और फिर इस निर्णय पर पुनर्विचार करें? और इस मीटिंग में यदि तुम्हारे द्वारा उठाई गई आशंकाएँ वाकई प्रकट होती दिखीं तो दूसरे भी तुम्हारी बात से सहमत हो जाएँगे।''

आशा राजी हो गई और हमने मिलकर यह निर्णय लिया। पहली मीटिंग के बाद वह बोली, ''मेरी सभी आशंकाएँ दूर हो गई हैं। चलिए हम इसे आगे बढ़ाते हैं।''

या साथियों के लिए एक–दूसरे से निम्नलिखित बातें कहना सम्भव है:

अ. मैं तुम्हें राजी करने की कोशिश नहीं करूँगा।

ब. चलो हम एक–दूसरे की बातें ध्यान से सुनें।

स. चर्चा करने और एक–दूसरे को सुनने के दौर में से हम मिलकर सबसे वाजिब निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

आगे मैं यह भी पूछता हूँ, क्या शिक्षकों के लिए विद्यार्थियों से यह सब कह पाना सम्भव है?

हमारी एक वरिष्ठ साथी, कमला, से एक बार संस्थागत सर्वे के दौरान यह पूछा गया कि क्या उसे अपने दृष्टिकोण व विचारों को सामने रखने का मौका मिलता है और क्या उसके विचारों को महत्व मिलता है, या उन पर ध्यान दिया जाता है। उसने

जवाब दिया, ''मैंने हमेशा ही अपने दृष्टिकोण को सामने रखा है। जब कोई निर्णय लिया जाता है और वह मेरे दृष्टिकोण के खिलाफ है, तो भी मुझे यह लगता है कि हाँ इस निर्णय में मेरा भी योगदान रहा है।''

संगठनों के लिए यह बहुत जरूरी है कि वे कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर एक सहमति बना पाएँ। कृष्णमूर्ति इसका संकेत देते हैं: दृष्टिकोण महत्वपूर्ण नहीं होते, तथ्य होते हैं। निर्णय प्रभुता के बल पर नहीं किए जाते, बल्कि 'मिलकर सोचने' के द्वारा किए जाते हैं और जहाँ ऐसा सहयोग हो जो सिर्फ किसी एक विचार के इर्द–गिर्द न हो। यह पूछना दिलचस्प हो सकता है कि यदि क्या ऐसी अवस्था किसी स्कूल या संगठन के 'रोजमर्रा' के संचालन के हिसाब से तर्कसंगत है। 'रोजमर्रा' वाली उपमा के अन्दर यह मान्यता छिपी रहती है कि मामलों को शीघ्रता से निपटाना जरूरी होता है, जल्दी में, 'रुका नहीं जा सकता।' क्या वाकई ऐसा है?

निर्णय सभी स्तरों पर लिए जाते हैं। यदि कुछ ऐसा हो जो किसी पीछे किए गए किसी काम से मेल खाता हो तो हम उसे 'निर्णय' नहीं कहते। लेकिन वह भी निर्णय ही होता है – पहले की तरह ही 'चलते रहने' का निर्णय।

अधिकांश निर्णय निष्पक्षता और निरन्तरता की जरूरत के जरिए किए जाते हैं। वस्तुतः अधिकांश संस्थागत समस्याओं का सम्बन्ध बीते कल में किए गए कामों या निर्णयों को शब्दशः या तत्व रूप में दोहराते जाने से होता है। कल की गई चीज को उसी तरह से, मशीनी अन्दाज में कर देना। नई कार्यपद्धति की जरूरत पर ध्यान न देना।

अभिव्यक्ति के लिए एक निष्पक्ष और वास्तविक आमंत्रण के बाद ध्यानपूर्वक सुनना, मानवीय संवाद की एक बेहद महत्वपूर्ण, पर अकसर ही मुश्किल से नसीब होने वाली विशेषता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि संस्थाओं और संगठनों की साझी भूमि पर ये सवाल पूरी जीवन्तता से उठते हैं।

इमारत का अहाता बाकी सब चीजों को परिभाषित कर देता है। आर्केस्ट्रा को एक संचालक की जरूरत होती है और सेना को एक सेनापति की। उन समूहों में भी, जहाँ लोकतंत्र का पालन किया जाता है, यह बेहद मुश्किल प्रतीत होता है कि 'प्रबल' या 'सर्वाधिक हावी' प्रभावों से अलग लीक पर काम किया जाए। क्या स्कूल और आधुनिक संगठन जीवन्त विकल्पों का सृजन कर सकते हैं? क्या संगठनों, स्कूलों के भीतर कार्यकारी क्षेत्रों में सत्ता और प्रभुत्व के लिए प्रगट या गूढ़ रूप में होने वाले संघर्ष का स्थान बुद्धिमत्ता की एक ज्यादा गहरी गुणवत्ता ले सकती है?

जी. गौतम ने द स्कूल, केएफआई के प्राचार्य के रूप में कार्य किया (1991 – 2009) तथा महत्वपूर्ण शैक्षणिक, प्रशासनिक तथा संस्थागत परिवर्तनों का पथ प्रदर्शन किया। वे अब केएफआई के चेन्नई ऐजुकेशन सैन्टर के निदेशक के तौर पर द स्कूल (जो तमिलनाडू के राज्य स्कूलों में महत्वपूर्ण योगदान देने वाला एक आउटरीच प्रोग्राम है) तथा नवीन केएफआई रहवासी स्कूल पाठशाला के कर्ताधर्ता हैं। उनसे gautama2004@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

सम्पादक की टिप्पणीः

यह लेख मूल रूप से द जर्नल ऑफ कृष्णमूर्ति स्कूल्स के अंक 10 में छपा था। सम्पादक इस लेख को पुनः छापने हेतु अनुमति प्रदान करने के लिए केएफआई का धन्यवाद करते हैं।